महर्षि च्यवन की शिवभक्ति

महामुनि च्यवन वे ही हैं, जिन्होंने मनुपुत्र शर्याति के महान् यज्ञ में इन्द्र का मान भंग किया था और अश्विनीकुमारों को देवताओं की पंक्ति में बिठाकर उन्हें यज्ञ का भाग अर्पण किया था।

ब्रह्माजी के वंश में महर्षि भृगु बड़े विख्यात महात्मा हुए हैं। एक दिन संध्या के समय समिधा लाने के लिये वे आश्रम से दूर चले गये थे। उसी समय दमन नाम का एक महाबली राक्षस उनके यज्ञ का नाश करने के लिये आया और उच्च स्वर से अत्यन्त भयंकर वचन बोला–'कहाँ है वह अधम मुनि और कहाँ है उसकी पत्नी?' वह रोष में भरकर जब बारम्बार इस प्रकार कहने लगा तो अग्नि देवता ने अपने ऊपर राक्षस से भय उपस्थित जानकर मुनि की पत्नी को उसे दिखा दिया। वह सती–साध्वी नारी गर्भवती थी। राक्षस ने उसे पकड़ लिया। बेचारी अबला अपनी रक्षा के लिये भृगुजी को पुकारने लगी। उसके अर्तभाव से पुकारने के बावजूद भी वह राक्षस उसे लेकर आश्रम से बाहर चला गया और दुष्टता भरी बातों से भृगु की उस पतिव्रता पत्नी को अपमानित करने लगा। उस समय महान् भय से त्रस्त होकर वह गर्भ मुनि पत्नी के पेट से गिर गया। उस नवजात शिशु के नेत्र प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सती के शरीर से अग्निदेव ही प्रकट हुए हों। उसने राक्षस की ओर देखकर कहा–'ओ दुष्ट! अब तू यहाँ से न जा, अभी जलकर भस्म हो जा। सती का स्पर्श करने के कारण तेरा कल्याण न होगा।' बालक के इतना कहते ही वह राक्षस गिर पड़ा और तुरंत जलकर राख का ढेर हो गया। तब माता अपने बच्चे को गोद में लेकर उदास मन से आश्रम पर आयी। महर्षि भृगु को जब मालूम हुआ कि यह सब अग्निदेव की करतूत है तो वे क्रोध से व्याकुल हो उठे और शाप देते हुए बोले–'शत्रु को घर का भेद बतानेवाले दुष्टात्मा! तू सर्वभक्षी हो जा (पवित्र, अपवित्र–सभी वस्तुओं का आहार कर)'। यह शाप सुनकर अग्निदेव को बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने मुनि के चरण पकड लिये और कहा–'प्रभो तुम दया के सागर हो। महामते! मुझपर अनुग्रह करो। मैंने झूठ बोलने के भय से उस राक्षस को आपकी पत्नी का पता बता दिया था, इसलिये मुझपर कृपा करो।'

अग्नि की प्रार्थना सुनकर मुनि दया से द्रवित हो गये और उनपर अनुग्रह करते हुए इस प्रकार बोले–'अग्ने! तुम सर्वभक्षी होकर भी पवित्र ही रहोगे।' तत्पश्चात् भृगु ने स्नान आदि से पवित्र हो हाथ में कुश लेकर गर्भ से गिरे हुए अपने पुत्र का जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय सम्पूर्ण तपस्वियों ने गर्भ से च्युत(गिरे) होने के कारण उस बालक का नाम च्यवन रख दिया। कुछ बड़े हो जाने पर भृगुकुमार च्यवन तपस्या करने के लिये नर्मदा नदी[1] के तट पर गये वहाँ पहुँचकर उन्होंने

---

1. स्कंदपुराण की एक कथा के अनुसार वितस्ता नदी के तट पर उन्होंने तपस्या की थी। जबकि उसी पुराण के प्रभासखण्ड में पायी जाने वाली दूसरी कथा के अनुसार उन्होंने प्रभासक्षेत्र में तपस्या की थी।

दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। तपस्या के दौरान उनके दोनों कंधों पर दीमकों ने मिट्टी की ढेरी जमा कर दी और उसपर दो पलाश के वृक्ष उग आये। हरिण उत्सुकतापूर्वक वहाँ आते और मुनि के शरीर में अपनी देह रगड़कर खुजली मिटाते थे; किन्तु उनको इन सब बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। वे अविचलभाव से स्थिर रहते थे। बहुत समय व्यतीत होने के कारण उनका शरीर मिट्टी के टीले के समान प्रतीत होने लगा। दैववश उनकी चमकती हुई आँखों के आगे चीटियों ने छेद कर दिया था।

एक समय की बात है। मनु के पुत्र शर्याति तीर्थयात्रा के लिये तैयार होकर परिवारसहित नर्मदा के तट पर गये, उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। राजा की एक कन्या थी जो अपनी सखियों के साथ वन में इधर-उधर विचरने लगी। वहाँ उसने महान् वृक्षों से सुशोभित वल्मीक (मिट्टी का ढेर) देखा। वह बड़े कौतूहल के साथ उसे देखने लगी। देखते-देखते उसकी दृष्टि महर्षि च्यवन की आँखों पर जा पड़ी जो चिटियों के बनाये छिद्रों में से चमक रही थीं। राजकन्या, जिसका नाम सुकन्या था, ने जिज्ञासावश काटों से दबाकर उन्हें फोड़ डाला। फूटने पर उनसे खून निकलने लगा। यह देखकर राजकुमारी को बड़ा खेद हुआ और वह दुःख से कातर हो गयी। अपराध से दबी होने के कारण उसने माता-पिता को इस दुर्घटना का हाल नहीं बताया। वह भयातुर होकर स्वयं ही अपने लिये शोक करने लगी। उस समय पृथ्वी काँपने लगी, आकाश से उल्कापात होने लगा, सारी दिशाएँ धूमिल हो गयीं तथा सूर्य के चारों और घेरा पड़ गया। राजा के कितने ही घोड़े नष्ट हो गये, बहुतेरे हाथी मर गये, धन और रत्न का नाश हो गया तथा उनके साथ आये हुए लोगों में परस्पर कलह होने लगा।[1]

इस प्रकार का उत्पात देखकर राजा डर गये और वे सब लोगों से पूछने लगे-'किसी ने मुनि का अपराध तो नहीं किया है?' परम्परा से उन्हें अपनी पुत्री की करतूत मालूम[2] हो गयी और वे अत्यन्त दुःखी होकर सेना और सवारियों सहित मुनि के पास गये। भारी तपस्या में लगे हुए च्यवन मुनि को देखकर राजा ने स्तुति के द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और कहा-'मुनिवर! दया कीजिये।' तब च्यवन ने सन्तुष्ट होकर कहा-'महाराज! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह सारा उत्पात तुम्हारी पुत्री का ही किया हुआ है। तुम्हारी कन्या ने मेरी आँखें फोड़ डाली हैं, इनसे बहुत खून गिरा है, इस बात को जानते हुए भी उसने तुम्हें नहीं बताया है; इसलिये अब तुम शास्त्रीय विधि के अनुसार मुझे उस कन्या का दान कर दो, तब सारे उत्पातों की शान्ति हो जायगी।' यह सुनकर राजा को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उत्तम कुल, नयी अवस्था, सुन्दर रूप, अच्छे स्वभाव तथा शुभ लक्षणों से संपन्न अपनी प्यारी

1. स्कंदपुराण की कथाओं के अनुसार मुनि के कोप से राजा शर्याति के सभी सैनिकों का मल-मूत्र रुक गया न कि उपर्युक्त नुकसान हुआ।
2. स्कंदपुराण की कथा के अनुसार सैनिकों को दुःख से व्याकुल एवं पिता को चिन्तित देखकर सुकन्या ने अनजाने में हुई अपनी गलती को स्वंय ही अपने पिता को बताया।

पुत्री उन अन्धे महर्षि को ब्याह दी। राजा ने जब अपनी कन्या का दान कर दिया तो मुनि के क्रोध से प्रकट हुए सारे उत्पात तत्काल शान्त हो गये। इस प्रकार मुनिवर च्यवन को अपनी कन्या देकर राजा शर्याति फिर अपनी राजधानी को लौट आये। पुत्री पर दया आने के कारण वे बहुत दुःखी थे।

राजा शर्याति के चले जाने पर महर्षि च्यवन पत्नीरूप में प्राप्त हुई उनकी कन्या के साथ अपने आश्रम पर रहने लगे। यद्यपि वे नेत्रों से हीन थे और बुढ़ापे के कारण उनकी शारीरिक शक्ति जवाब दे चुकी थी, तथापि वह कन्या उन्हें अपने कुलदेवता के समान समझकर शुश्रुषा करती थी। वाणी, शरीर और क्रिया के द्वारा मुनि की सेवा करती हुई उस राजकुमारी ने एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये तथा अपनी कामना को मन में ही रखा।

एक समय की बात है, सूर्य के पुत्र दोनों अश्विनीकुमार च्यवन मुनि के आश्रम के समीप पधारे। सुकन्या ने स्वागत के द्वारा उनका सम्मान करके उन दोनों का अतिथ्य-सत्कार किया। सुकन्या के किये हुए पूजन तथा अर्घ्य-पाद्य आदि से उन अश्विनीकुमारों के मन में प्रसन्नता हुई। उन्होनें स्नेहवश उससे कहा-'देवि! तुम कोई वर माँगो।' सुकन्या ने कहा-'देवताओं! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे पति को नेत्र प्रदान कीजिये।' सुकन्या का यह मनोहर वचन सुनकर तथा उसके सतीत्व को देखकर उन वैद्यों ने च्यवन मुनि ने कहा-'मुने! सिद्धों द्वारा तैयार किये हुए इस कुण्ड में आप गोता लगावें।' ऐसा कहकर उन्होंने च्यवन मुनि को, जिनका शरीर वृद्धावस्था का ग्रास बन चुका था, उस कुण्ड में प्रवेश कराया और स्वयं भी उसमें गोता लगाया। तत्पश्चात् उस कुण्ड में से तीन पुरुष प्रकट हुए जो अत्यन्त सुन्दर तथा एक समान रूपवाले थे। उन तीनों को अत्यन्त रूपवान् और तेजस्वी देखकर अपने पति को पहचान न सकी। तब वह साध्वी दोनों अश्विनीकुमारों की शरण में गयी। सुकन्या के पातिव्रत्य से सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसके पति को दिखा दिया। तदनन्तर महर्षि च्यवन अश्विनीकुमारों से बोले-'आप दोनों ने कृपा करके मुझे दिव्य रूप तथा तरुण अवस्था से संयुक्त किया है इसलिये आप दोनों को यज्ञभाग का अधिकारी बनाऊँगा।' मुनि की बात सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्नतापूर्वक चले गये।

तदनन्तर राजा शर्याति ने जब सुना कि महर्षि च्यवन को नयी अवस्था प्राप्त हुई है, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और सेना के साथ उनके आश्रम पर गये। पुत्री एवं जामाता को देवकुमारों की भाँति देखकर राजा शर्याति के हर्ष की सीमा न रही। बातचीत में ही च्यवन ऋषि ने राजा से कहा-'राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा। आप सब सामग्री एकत्र करें।' राजा शर्याति इस प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शुभ मुर्हूत में यज्ञमण्डप निर्माण कराया। उस मण्डप में महर्षि च्यवन ने राजा से यज्ञ आरम्भ कराया और उसमें अश्विनीकुमारों के लिये सोमरस का भाग ग्रहण किया। इन्द्र ने उन्हें ऐसा करने से रोका और कहा-'अश्विनीकुमार सोमरस के अधिकारी नहीं हैं, ऐसा मेरा निश्चित मत है। वे दोनों

देवताओं के वैद्य हैं, अत: निन्दित माने गये हैं।'

च्यवन ने कहा – देवराज! आप अश्विनीकुमारों को भी देवताओं की ही कोटि में समझें। ये दोनों महात्मा रूप – संपदा से सम्पन्न और तेजस्वी हैं। उन्होंने इस समय मुझे अजर बनाया है।

इन्द्र बोले – ये दोनों वैद्य हैं और इच्छानुसार रूप धारण करके मर्त्यलोक में विचरते रहते हैं; अत: देवताओं की श्रेणी में बैठकर सोम के अधिकारी कैसे हो सकते हैं?

इन्द्र के यों कहने पर भी उनका अनादर करके च्यवन मुनि ने अश्विनीकुमारों के लिये भाग ग्रहण किया। यह देख इन्द्र ने कहा – 'यदि तुम मेरी अवहेलना करके इन वैद्यों के लिये सोमरस का भाग ग्रहण करोगे तो मैं तुम्हारे ऊपर भयंकर वज्र का प्रहार करूँगा।'

इन्द्र की यह बात सुनकर च्यवन ने एक बार उनकी ओर दृष्टिपात किया और अश्विनीकुमारों के लिये सोमरस का भाग विधिपूर्वक निकाला। इसी समय इन्द्र ने उनपर तुरंत वज्र का प्रहार किया, परंतु भृगुनन्दन च्यवन ने वज्रसहित उनकी बाँह स्तंभित कर दी। तदनन्तर मन्त्र पढ़कर अग्नि में आहुति डाली। मुनि के तपोबल से उस समय महापराक्रमी महाकाय मद नामक दैत्य उत्पन्न हुआ और क्रोध में भरकर भयंकर सिंहनाद से सम्पूर्ण लोकों को गुँजाता हुआ इन्द्र की ओर दौड़ा।

मुँह बाये हुए काल की भाँति उस दैत्य को आते देख इन्द्र भय से पीड़ित हो गये और मुनिवर च्यवन को प्रणाम करके बोले – 'भृगुनन्दन! आज से ये दोनों अश्विनीकुमार सोमरस के अधिकारी होंगे। तपोधन! मुझपर आपका अकारण क्रोध न हो और मेरी रक्षा करें। आज की इस घटना से सुकन्या के पिता राजा शर्याति की कीर्ति संसार में अमर होगी। आप मुझपर कृपा करें।'

इन्द्र के इस प्रकार प्रार्थना करने पर मुनिवर च्यवन का क्रोध शान्त हो गया। इन्द्र उनकी आज्ञा ले शीघ्र वहाँ से चले गये। च्यवन ने इन्द्र की पूजा करके अश्विनीकुमारोंसहित सब देवताओं का पूजन किया तथा राजा शर्याति का यज्ञ पूर्ण कराकर वे सुकन्यासहित अपने आश्रम लौट आये। उनके द्वारा स्थापित च्यवनेश्वर लिंग महापातकों का नाश करनेवाला है।

स्कन्दपुराण की एक अन्य कथा में कहा गया है कि अश्विनीकुमारों को यज्ञ में भाग दिलवाने के निश्चय से इन्द्र बहुत असंतुष्ट हुए उन्होंने उनसे उनके दुराग्रह को छोड़ देने के लिये कहा और ऐसा न करने पर वज्रप्रहार का भय भी दिखाया। पर च्यवन मुनि अडिग रहे। उन्होंने विचार किया कि जिन महेश्वर की सेवा में इन्द्र, वरुण आदि देवता निरत रहते हैं, उन्हीं की आज्ञा से सभी देवता अपना – अपना कार्य करते हैं, जो सृष्टि, संरक्षण और संहार में सर्वथा समर्थ हैं, मुझे उन्हीं देवाधिदेव भगवान् शंकर की आराधना करनी चाहिये। इसी से अभीष्टसिद्धि होगी। ऐसा निश्चय करके महर्षि च्यवन महाकाल(उज्जैन) वन में गये। वहाँ शिवलिंग की स्थापना कर भगवान् का पूजन करने लगे। उनका हठ देखकर इन्द्र कुपित हुए और उनको मारने के लिये वज्र चलाया, पर भगवान् शंकर ने

पहले से ही इन्हें अभय कर दिया था, इसलिये इन्द्र की बाहु का स्तंभन हो गया और च्यवन ऋषि के ऊपर वज्र चल न सका।

इसी बीच उस लिंग में से एक ज्योति निकली जिसकी ज्वाला से त्रैलोक्य जलने लगा। उससे सब देवता संतप्त हो गये, वे सभी इन्द्र से अश्विनीकुमारों को यज्ञभागी बनाने की प्रार्थना करने लगे। देवों के कहने पर भयभीत इन्द्र ने च्यवन ऋषि को प्रणाम करते हुए कहा कि 'महर्षे! आज से अश्विनीकुमारों को यज्ञ का भाग मिलेगा और वे सोमपान भी कर सकेंगे। इस शिवलिंग का नाम अब से 'च्यवनेश्वर' होगा और इसके दर्शन से क्षणभर में जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जायँगे। मन की दुर्लभ कामनाएँ भी इनकी आराधना से पूर्ण हो जायँगी।[1] इतना कहकर इन्द्र सब देवों को साथ लेकर स्वर्ग को चले गये। तभी से अश्विनीकुमारों को यज्ञ में भाग मिलने लगा।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'संक्षिप्त पद्मपुराण,' 'संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत' तथा 'संक्षिप्त स्कंदपुराणांक' पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

शिवगीता में कहा गया है कि निष्काम एवं जितेन्द्रिय होकर शिवजी का ध्यान करते हुए नित्य अथर्वशिरस्, षडक्षर तथा प्रणव आदि का जप करनेवाला निश्चित रूप से शिव-स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

यस्तु जपेन्नित्यं ध्यायमानो ममाकृतिम्।
षडक्षरं वा प्रणवं वा निष्कामो विजितेन्द्रियः।।
तथाथर्वशिरोमन्त्रं केवलं वा रघूत्तम।
तेनैव च देहेन शिवः संजायते ध्रुवम्।। (शिवगीता 16/59-60)

1. **भक्ता ये पूजयिष्यन्ति देवेशं च्यवनेश्वरम्।**
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्।।
यं यं काममभिध्यायेन्मनसाभिमतं नरः।
तं तं दुर्लभमाप्नोति च्यवनेश्वरदर्शनात्।।
(स्क. पु. आवन्त्यखण्ड, चतुरशीति लिंग माहात्म्य 30/51, 53)